संपादकीय

सत्यांश

गरीबी और बदनसीबी

अभी इसी 12 मार्च को छपरा से दिल्ली आने के क्रम में ट्रेन में एक भिखारी के आर्त्तनाद की दो पंक्तियाँ सुनाई दीं। पंक्ति ठीक उसी रूप में याद नहीं, पर भाव सीधे स्मरण आता है - 'देने वाला (खुदा) कुछ दे या न दे, पर गरीबी न दे। मौत दे भी तो दे, पर बदनसीबी न दे।' संभव है, बहुतों का इस कथन से इत्तफाक न हो या यह फिजूल का लगे। सद्ग्रंथों और आप्त वचनों से यह विचार प्रकट हुआ है कि गरीबी परिश्रम से और दुर्भाग्य पुरुषार्थ से मिट जाता है। समाज में इसके जीते-जागते उदाहरण निचले व उच्च स्तर पर मिल जाएँगे। परंतु भिखारी का कथन भी कम अनुभवजन्य नहीं है। वहाँ उसके जीवन का 'आत्म' बोल रहा है।

गरीबी और बदनसीबी - इन दोनों में से कोई एक ही व्यक्ति को तबाह रखने के लिए पर्याप्त है; किंतु जहाँ दोनों का जल्दी संयोग हो, वहाँ जर्जर-तबाह जीवन के सिवा क्या हो सकता है? यक्ष के प्रश्न के उत्तर में युधिष्ठिर ने दरिद्रता को सबसे बड़ा दुख कहा है जो आज भी यथार्थ है। इसके कारण अनेक प्रकार की बदनसीबियाँ जिंदगी में आती हैं और मनुष्य का सबल-सक्षम पक्ष भी अक्षम साबित होता है। संभवतः इसलिए भी दुनिया के आरंभ से लेकर अब तक धन पर सर्वाधिक जोर रहा है। यद्यपि अर्थ से विरक्ति रखने का भाव भी अभिव्यक्त हुआ है, तथापि यह अनासक्ति धन के रहने पर ही संभव है। अर्थाभाव में धन से परहेज की बात सोचना भी मुश्किल है। यही नहीं, अर्थ के अभावपूर्ण वियोग में अर्थ-प्राप्ति की तीव्र लालसा मन में बलवती होती है। इस प्रकार किसी वस्तु-चीज का परित्याग उसके होने की दशा में ही मुमकिन है, पर रहने पर भी सामान्यतः उसे त्यागने का मानस तैयार नहीं होता।

जो भी हो, भिखारी ने दो पंक्तियों के गीत के अतिरिक्त एक दाता से लड़ते-झगड़ते जो कुछ कहा, उसका जिक्र इस लेखनी से संभव नहीं है। भिखारी पैर से पूर्णतः अपाहिज था और किसी प्रकार घुसक-घुसक कर चल पा रहा था। चूँकि वह गरीब था, इसलिए भिखारी था और अपाहिज था, इसलिए बदनसीब भी। माँगने से उसकी दरिद्रता तात्कालिक रूप से मिट जाती है- जैसा कि उसका दावा था कि वह कई पागलों-भिखारियों को पेट पालकर जिन्दा रखता है। लेकिन उसके अपाहिज-अशक्त होने की बदनसीबी वाले मर्ज की दवा क्या हो? दुर्भाग्य-बदनसीबी व्यक्ति के लिए ऐसी दशा है, जिस पर उस व्यक्ति का अपना कोई वश नहीं चला होता, नहीं चल पाता। जहाँ उसकी अपनी शक्ति कारगर नहीं हो पाती, वहाँ वह दैव, नियति, भाग्य या नसीब की सत्ता का दास हो जाता है, उन्हें अपनी खराब स्थिति के लिए कोसता है। ध्यातव्य है कि नियति या भाग्य का खेल अथवा दुर्भाग्य या बदनसीबी उसे ही कहा जा सकता है जिसमें व्यक्ति की अपनी अथवा समाज-सरकार और राज्य शासन की बेहूदगी, षड्यंत्र, अकर्मण्यता व दरिंदगी की जानी-अनजानी मिलावट न हो। यों मूर्खता, काहिली, साजिश के नेटवर्क द्वारा व्यक्तिगत-पारिवारिक से लेकर सामाजिक स्तर पर परेशानी-समस्या खड़ी की जाती है और उसे ईश्वर की इच्छा कहा जाता है, बदनसीबी-दुर्भाग्य का जामा पहनाया जाता है। यह मनुष्य निर्मित एवं शासन कृत बदनसीबी है। मानव कृत दुर्भाग्य का ठीकरा अदृश्य शक्तियों जैसे नियति-भाग्य के सिर फोड़ना बिल्कुल विशुद्ध चालबाजी भरा अक्षम्य अपराध है। चालाकियों, ओछी हरकतों और अपराधों द्वारा हमेशा संकट पैदा करने वालों द्वारा इन्हें दैवी लीला कहते बहुत बार सुनने-भुगतने को मिला है। ऐसा कहने वाले बालक-नवजवान से लेकर पंडित-ज्ञानी, बुजुर्ग, स्त्री-पुरुष सहित अनेक बड़े-बड़े ओहदाधारी होते हैं।

एक व्यक्ति अपने लिए और समाज के लिए बहुत कुछ करने का सामर्थ्य रखता है, पर सामूहिक रूप से जब प्रतिगामी-विपरीत व्यवहार होता है तो उसकी पूरी क्षमता कुछ करने के बदले जूझने में ही लग जाती है। किसी व्यक्ति-विशेष की अपनी क्षमता की सीमा होती है, पर सामाजिक, व्यावसायिक, प्रशासनिक कुचक्र का घेरा अपरिमित। जन- साधारण की दुरावस्था के लिए समाज-सरकार के सारे अंग-उपांग जिम्मेवार हैं, संबंधित इकाइयाँ उत्तरदायी हैं, अतः अपनी-अपनी जिम्मेवारी को सकारात्मक एवं ईमानदारीपूर्ण ढंग से निभाने के बाद भाग्य या नियति को समझने की ओर बढ़ा जाए तो बेहतर होगा।